खण्ड ३

(१) साधनाकाल
(२) केवलज्ञान
(३) धर्म-प्रचार

प्रथम वर्ष

प्रभु महावीर का साधनाकाल बहुत सी घटनाओं से परिपूर्ण है। उनकी साधना कितनी उत्कृष्ट थी, इसका अनुमान जैन आचार्यों के इस कथन से लग जाता है-

भगवान महावीर की तप साधना एक ओर और तेईस तीर्थंकरों की तपः साधना एक ओर।

भगवान महावीर का साधनाकाल अत्यन्त कठोर घोर परीषहों से युक्त था। उस जीवन में उन्हें जो दैविक, पाशविक एवं मानविक उपसर्ग, कष्ट एवं परीषह उपस्थित हुए, उसमें उनके अंतःकरण की करूणा, कोमलता, कठोर तितिक्षा, दृढ़ मनोबल और अविचल समाधि के जो दर्शन हमें होते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं। भगवान महावीर ने दीक्षा लेते ही कूर्मारग्राम की ओर प्रस्थान किया।

इसी समय उन्होंने संसार के सामने दान का वह उदाहरण प्रस्तुत किया, जो संसार के इतिहास में अन्यत्र देखने सुनने को प्राप्त नहीं होता। इस घटना का वर्णन आवश्यकचूर्णि,[1] हारिभद्रीय वृत्ति, [2] मलयगिरि वृत्ति,[3] चउपन्न महापुरूष चरियं,[4] महावीर चरियं,[5] त्रिषष्टिशलाका पुरूष चारित्र[6] और कल्पसूत्र की टीकाओं में उपलब्ध होता है।

दीक्षा लेकर प्रभु ने ज्ञातृखण्ड वन से विहार किया। जन-जन के नायक को लोग उस समय तक निहारते रहे, जब तक वह आंखों से ओझल न हो गए। ओझल होते ही प्रजा की आंखों से आंसुओं की बरसात उमड़ पड़ी।

प्रभु तो अब अकिंचन भिक्षु बन चुके थे। उनके कंधे पर इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वे आगे बढ़ रहे थे। उन्हें रास्ते में ही सोमशर्मा नाम का वृद्ध ब्राह्मण मिला। यह ब्राह्मण राजा सिद्धार्थ का मित्र था।[8]

वह महावीर के सामने आया। उसने कहा- "भगवन्! मैं दीन और दरिद्र हूं। न खाने को अन्न है, न पहनने को वस्त्र हैं और न रहने को झोंपड़ी है। भगवन्! जिस समय आप वर्षीदान दे रहे थे उस समय मैं भूख से बिलखते परिवार को छोड़कर धन की आशा में परदेस गया हुआ था।[10] मुझ अभागे को क्या पता था कि यहां धन की वर्षा हो चुकी है। मैं घर खाली हाथ लौटा। आते ही मेरी पत्नी ने मेरे भाग्य को फटकारते हुए कहा कि यहां सोने का मेघ उमड़-उमड़कर बरस रहा था, उस समय तुम कहां भटकते रहे? अब भी शीघ्र जाओ और प्रभु महावीर से याचना करो, वह दीनबन्धु तुम्हें अवश्य निहाल करेंगे।[11] "हे राजकुमार! इस दरिद्र ब्राह्मण को कुछ तो दीजिए। कल्पवृक्ष के नीचे आकर कौन खाली जाता है? आप तो मेरी स्थिति को जानते हैं।" प्रभु महावीर ने गरीब ब्राह्मण की कथा सुनी। फिर करूणा भरे स्वर में बोले- "आर्य! इस समय मैं अकिंचन भिक्षु हूं।[12] ब्राह्मण ने प्रभु महावीर के स्कन्ध पर पड़े देवदूष्य वस्त्र की ओर देखा, फिर उसने अपने मन की बात कह डाली- "प्रभु! आपके दर से मैं खाली कैसे जाऊं? देना चाहो तो अभी भी बहुत कुछ है।" प्रभु महावीर ने ब्राह्मण का इशारा समझ लिया। उन्होंने उस वस्त्र में से आधा वस्त्र फाड़कर ब्राह्मण को दे दिया।[13]

दिया। रफूगर उस अमूल्य वस्त्र को देखकर कहने लगा-"यह तो बहुमूल्य देवदूष्य है। यदि पूरा वस्त्र मिल जाए तो लाख स्वर्ण-मुद्राएं मिल सकती हैं।"[१४] रफूगर की बात ब्राह्मण को जंच गई। वह भगवान महावीर के पीछे-पीछे चलने लगा। एक वर्ष और एक मास के पश्चात् वह आधा वस्त्र कंधे से गिर पड़ा।[१५]

बाकी का भाग ब्राह्मण ने उठाकर रफूगर को दिया। रफूगर ने उसे जोड़ दिया। वह वस्त्र लेकर प्रभु महावीर के भ्राता राजा नन्दीवर्द्धन के पास गया। महाराजा नन्दीवर्द्धन ने देवदूष्य को पहचान लिया। उपने त्यागी भाई की निशानी के रूप में उस वस्त्र को उसने एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं में ब्राह्मण से खरीदा।

ब्राह्मण का दारिद्रय जीवन भर के लिए दूर हो गया। यह घटना प्रभु महावीर के त्याग व अनासक्ति का जीवन्त प्रमाण है। प्रभु महावीर के वस्त्रदान से उनकी करूणा झलकती है। भगवान महावीर ने करूणा को अहिंसा की माता बताया है।

राजकुमार वर्द्धमान अब श्रमण बन गए थे। प्रव्रजित होते ही उन्होंने संयम की कठोर साधना की। जीवनभर वे अनासक्त रहे। भगवान महावीर का जीवन हर प्रकार से आदर्श था। वे कहने से पहले हर काम स्वयं करते थे। उन्होंने अपने शरीर को प्रयोगशाला बना रखा था।

साधनाकाल में यह उनका प्रथम दान था।

अब प्रभु महावीर वस्त्रविहीन दशा में विहार करने लगे। ठीक भी है जब शरीर का मोह नहीं रहा, तो वस्त्र की चिंता कौन करे। उन्हें तो अपने सभी कर्म खपाने थे। उनकी जीवन यात्रा साधना की ओर अग्रसर थी।

सहनशील प्रभु महावीर

वह कूर्मारग्राम पधारे। पक्षी अपने घोंसले से बाहर आ चुके थे। सुबह हो रही थी। प्रभु महावीर के मन में आध्यात्मिक जागरण का सुनहरा प्रभात प्रस्फुटित हो रहा था। वह गांव के बाहर जंगल में एक वृक्ष के नीचे नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि केन्द्रित कर स्थाणु की तरह ध्यान में स्थिर हो गए।[१६]

उसी समय एक ग्वाला अपने बैलों के साथ आया। उस समय गोदोहन का समय था। उस ग्वाले को समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने बैलों को किसके सुपुर्द करे? उसने पास में बैठे प्रभु महावीर को देखा। फिर सरल भाव से कहा- "मेरे बैलों का ध्यान रखना। मैं गाएं दुहकर आता हूं।"[१७]

प्रभु महावीर समाधि में लीन थे। उन्होंने ग्वाले की बात की ओर कोई ध्यान न दिया। बैल सारा दिन जंगल में मस्ती से आजाद घूमते रहे। फिर बैल क्षुधा व प्यास मिटाने दूर निकल गए।

ग्वाला लौटा। उसने देखा, बैल नहीं थे। उसने समाधिस्थ महावीर से पूछा- "मेरे बैल कहां हैं?" प्रभु महावीर की ओर से कोई उत्तर न पाकर, वह बैलों की तलाश में निकल पड़ा।

कुछ समय के पश्चात् बैल खा-पीकर अपने पुराने स्थान पर आ गए। इधर दिनभर ग्वाला बैलों की तलाश में थका-मांदा, भटकता हुआ प्रभु महावीर के पास पहुंचा। वहां बैलों को देखकर वह क्रोधित हो गया। उसके मन में ख्याल आया- 'जरूर इस तथाकथित साधु ने मेरे बैल छुपा रखे हैं। मुझे इसे सजा

ग्वाला महावीर प्रभु को बैलों को बांधने वाली रस्सी से मारने को दौड़ा।[१८]

उसी समय इन्द्र का सिंहासन कम्पायमान हुआ। वह प्रभु की सेवा में उपस्थित हुआ। ग्वाले को ललकारते हुए कहा- "मूर्ख! जिसे तू चोर समझता है। वह चोर नहीं है, ये तो राजा सिद्धार्थ के तेजस्वी पुत्र वर्धमान हैं। राजवैभव को लात मारकर ये आत्म-साधना के लिए निकले हैं। ये तेरे बैलों की क्या चोरी करेंगे? मूर्ख! तू प्रभु पर व्यर्थ प्रहार कर रहा था।"[१९]

ग्वाला इन्द्र की बात सुन थरथर कांपने लगा। वह प्रभु महावीर की महानता को समझ चुका था। उसने गिड़गिड़ाकर प्रभु महावीर के चरण पकड़ लिए। वह क्षमा मांगने लगा। फिर प्रभु महावीर की वन्दना करके चल दिया।

स्वावलम्बी प्रभु महावीर

इस घटना का देवराज इन्द्र पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने प्रभु से निवेदन किया- "भगवन्! वर्तमान कालिक जनता मूर्ख व अज्ञानी है। आपको अभी साढ़े बारह वर्ष तक तप करना है। कई मिथ्यात्वी देव आपकी साधना में रूकावट बन सकते हैं। जंगली पशु आपको कष्ट पहुंचा सकते हैं। मनुष्य आपके रास्ते में मुसीबतें खड़ी कर सकते हैं। इसलिए आप आज्ञा प्रदान करें, ताकि आपके साधनाकाल तक मैं आपकी सेवा में रहकर आपके कष्ट दूर कर सकूं।" [२०]

महावीर तो महावीर थे। उन्हें पता था कि कोई भी किसी का कष्ट दूर करने में सक्षम नहीं। अपने-अपने कर्मों का व्यक्ति को फल भोगना पड़ता है। कौन, किसको कष्ट देता है। दुःख-सुख, नरक-स्वर्ग निर्माण का कारण स्वयं जीवात्मा है और उन्हें भोगने वाला भी वह स्वयं है।

इन्द्र की अज्ञानता पर प्रभु मुस्कराए। फिर स्वावलम्बी भाषा में कहने लगे- "देवेन्द्र! आत्म-साधक-जीवन अरिहंतों के जीवन में यह न कभी हुआ है, न भविष्य में होगा, जो केवलज्ञान के मामले में किसी की सहायता ले। तथा आत्म-सिद्धि या मुक्ति किसी के बल पर प्राप्त की जाए। साधक तो अपनी शक्ति से मोक्ष तक को प्राप्त होता है।"[२१]

इस प्रकार प्रभु महावीर ने प्रथम दिवस में ही अपनी साधना बिना किसी देव-मनुष्य की सहायता से शुरू की थी। वह मनुष्य को साधना के क्षेत्र में अपना उदाहरण प्रस्तुत कर आत्म निर्भर बनाना चाहते थे। वह तो आत्म-साधना के मामले में ईश्वर की गुलामी को भी स्वीकार नहीं करते थे। सिद्ध या ईश्वर उनके लिए आदर्श थे। वह जानते थे कि आत्मा-परमात्मा में कर्म का भेद होता है। जब कर्म की लकीर मिट जाती है, तो आत्मा अपने सिद्ध परमात्मा स्वरूप को प्राप्त करती है। यह मुक्तात्मा ही परमात्मा है।

प्रभु महावीर की वाणी सुनकर देवेन्द्र नतमस्तक हो गए। वह धन्य धन्य कहते हुए स्वर्ग में चले गए।

देवेन्द्र सोचने लगे- 'सत्य है आत्म-साधक संकटों से घिरने पर भी दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। क्या विराट् काय हाथियों से घिर जाने पर सिंह कभी दूसरों के सहयोग की ओर ताकता है,[२२] सत्य है प्रभु महावीर हजारों सिंहों के बल के धनी धर्म-चक्रवर्ती थे।[२३]

दूसरे दिन प्रभु महावीर कोल्लाग सन्निवेश पधारे। वहां बहुक नाम के ब्राह्मण थे। उसके द्वार पर घी और शक्कर से मिश्रित परमान्न (खीर) से प्रभु महावीर ने पारणा किया।

उन्हें भिक्षा में खीर दी और भक्तिभाव से सम्मान किया।''[२४]

तापसों के आश्रम की घटना

भगवान महावीर आगे चले। वह वहां से चलकर कोल्लाग सन्निवेश में पधारे। वहां पर दुइज्जंत तापस का विशाल आश्रम था। वह तापस प्रभु के पिता सिद्धार्थ का पुराना मित्र था।[२५]

प्रभु महावीर को आते देखकर उसने प्रभु का खूब सन्मान किया। भगवान महावीर ने भी पूर्व के अभ्यासवश उनसे मिलने दोनों बाहें पसारीं।[२६]

प्रभु वहां एक दिन विराजे। अगले दिन प्रभु महावीर ने वहां से भी प्रस्थान किया।

जाने के समय आश्रम के तापसों ने प्रभु से कहा- ''यह आश्रम आपका है। जब चाहो, यहां आकर रहो। आप वर्षावास का समय यहां गुजारना चाहें, तो अच्छा रहेगा।''

भगवान महावीर ने बात सुनी, पर कोई उत्तर न दिया। वह सिंह की तरह अभय विचरण करने वाले थे। उनकी दृष्टि में आश्रम व महल दोनों त्याज्य थे।

भगवान महावीर काफी समय जंगलों में साधना करते रहे। आखिर वर्षावास का समय आया। प्रभु महावीर तापसों के आश्रम में पहुंचे। कुलपति ने उनका स्वागत किया। उनके रहने के लिए झोंपड़ी का निर्माण करवा दिया। उसी कुटिया में वह ध्यान-मुद्रा में स्थित हुए।

उस वर्ष वर्षा न हुई। भूमि सूखी थी। जल के अभाव से वनस्पति पैदा न हुई। पशु भूखे मरने लगे। गांवों के पशु जंगल में आ जाते। अपनी भूख-प्यास मिटाने की कोशिश करते। भयंकर सूखा था। पशुओं को कहां ज्ञान था?

वे घूमकर तापसों के आश्रम में आने लगे। वहां घास-फूस की झोपड़ियां थीं। वे उन्हें खाने की चेष्टा करते।

आश्रम के तापस उन्हें डण्डे लेकर भगाने की चेष्टा में रहते। पर पशु भगवान महावीर के झोंपड़ी में आते, प्रभु महावीर कुछ भी प्रतिकार न करते। पशुओं के लिए उनके मन में करूणा जो थी।

एक दिन पशु प्रभु महावीर की सारी कुटिया खा गए। प्रभु महावीर तो विदेह थे। ध्यानमग्न थे। दीक्षा लेते समय जो शरीर पर सुगन्धित, गौशीर्ष, चन्दन आदि लगाया गया था और जिसके कारण कितने कीट, पतंग, डांस, मच्छर आदि जहरीले जीव उनके कोमल शरीर पर दंश लगाते, पर उन्होंने कभी इन जीवों की ओर ध्यान न दिया।[२७] महावीर ने झोंपड़ी की परवाह न की। जिसे अपने शरीर की परवाह नहीं थी, वह झोंपड़ी की कैसे करता? इस घटना से तापस के शिष्य नाराज और क्रोधित हो गए। वे सब अपने गुरू से प्रभु महावीर की शिकायत करने गए।

तापसों ने अपने गुरू से कहा- ''तुम्हारा नया मेहमान कैसा आलसी है कि अपनी कुटिया की रक्षा तक नहीं कर सकता। दूसरों की कुटिया की रक्षा कैसे करेगा? हमने बड़ी मेहनत से अतिथि-सत्कार को ध्यान में रखकर उसकी झोंपड़ी का निर्माण किया था। पर इस साधक ने हमारी मेहनत को मिट्टी में मिला दिया है।''

दुइज्जंत तापस पर अपने शिष्यों द्वारा की गई शिकायत का गहरा असर पड़ा। वह भी अपने शिष्यों की तरह उदासीन और अप्रसन्न हो गया। वह महाश्रमण प्रभु महावीर के पास आया और कहने लगा-

कुटिया की रक्षा नहीं कर सकते? दुष्टों को दण्ड देना आपका कर्त्तव्य है, फिर कर्त्तव्य से विमुख क्यों होते हो?''[२८]

ये बातें कहकर कुलपति तापस चला गया। प्रभु महावीर के अन्तर्मन पर इन बातों का गहरा असर हुआ। उन्होंने इन बातों का उत्तर नहीं दिया।

उन्होंने सोचा- 'मैंने राजमहल छोड़ा। फिर झोपड़ी के मोह में क्यों फंसू? मेरे लिए कहीं यह झोंपड़ी ममता और अहंकार का कारण न बन जाए, कहीं मैं अपने मूल लक्ष्य से भटक न जाऊं साधना ही तो करनी है। वह किसी भी जगह पर की जा सकती है।'

वह गहन चिन्तन में उतरे- 'मैं झोंपड़ी की रक्षा नहीं कर सकता और झोंपड़ी पर भूखे पशु मुंह मारते हैं, जिस कारण तापस वर्ग नाराज होता है। मेरी समाधि उनकी असमाधि बन जाती है। जो मेरे लिए अनुचित है।' यह सोचकर प्रभु ने महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया। उन्होंने ५ दिन बाद उस झोंपड़ी को अलविदा कहा।''[२९]

इस तरह चातुर्मास में वहां से प्रभु विहार कर अस्थिकग्राम पधारे। दुइज्जंत के आश्रम से निकलते ही प्रभु महावीर ने पांच प्रतिज्ञाएं धारण कीं-

(१) अप्रीतिकर स्थान पर नहीं रहूंगा।
(२) सदा ध्यानस्थ रहूंगा।
(३) मौन रहूंगा।
(४) हाथ में भोजन करूंगा।
(५) गृहस्थी की विनय (खुशामद) नहीं करूंगा।

आचारांग सूत्र के अनुसार प्रभु ने किसी के पात्र में भोजन नहीं किया। पर आवश्यक सूत्र के टीकाकारों के अनुसार इस घटना से पहले प्रभु गृहस्थ के पात्र में भोजन ग्रहण कर लेते थे।

ये कठोर एवं भयंकर प्रतिज्ञाएं थीं जिनके कारण प्रभु महावीर को अनेक विकट उपसर्ग सहने पड़े। लोग उन्हें कष्ट देते, वह आह तक न करते। लम्बे-लम्बे गुप्त तप करते।

शूलपाणि यक्ष के उपद्रव

प्रभु महावीर ने आश्रम छोड़ा, तो अस्थिकग्राम के बाहर एक मन्दिर में रात्रि ठहरने के लिए आज्ञा मांगी। पुजारी ने कहा- ''भिक्षु! तुम्हारे यहां ठहरने में कोई आपत्ति नहीं है। पर यहां का देव बड़ा दुष्ट है। वह रात्रि को किसी को भी जिन्दा नहीं छोड़ता। हमारे गांव में वर्षों पहले एक व्यापारी का बैल अतिबोझ के कारण मर गया था, वह यक्ष बनकर गांव के लोगों को सताने लगा। हम लोगों ने इसकी प्रसन्नता के लिए इस मन्दिर का निर्माण उसी स्थान पर किया, जहां यह बैल मरा था। इसी कारण वह मनुष्य के नाम से घृणा करता है। जो भी मानव यहां निवास करता है, सुबह मरा हुआ मिलता है।''

''आप सुकुमार हैं। किसी अच्छे घर के लगते हैं। आप कहो तो हम आपको अपने गांव में ठहरने की सुन्दर व्यवस्था करा सकते हैं।''

पर प्रभु महावीर तो यक्ष शूलपाणि का उपसर्ग सहने और उसका उद्धार करने के लिए पधारे थे।

प्रभु ने पुनः याचना की, तो ग्रामवासियों ने मजबूरी में आज्ञा दे दी। इन्द्र शर्मा पुजारी आरती करके

अब रात्रि शुरू हुई। जंगल का भयंकर सन्नाटा, दूर-दूर तक मानव जाति का निशान नहीं था। काला धुआं मन्दिर के चारों ओर से उठ रहा था। धुआं गहरा होता गया। उस गहरे धुएं में यक्ष की आकृति दिखाई देने लगी। बिजली की तरह चमकता भयंकर शूल उसके हाथों में था। वह तो रौद्र रूप में साक्षात् यमराज लग रहा था। भगवान महावीर के सामने आया और धमकी भरे स्वर में कहने लगा- "हे मृत्यु को चाहने वाले, तूने इन ग्रामवासियों का कहा नहीं माना, लगता है तू मेरी शक्ति से अपरिचित है।" फिर भयंकर अट्टहास हुआ।

यक्ष पुनः धमकी भरे स्वर में बोला- "तू सुन्दर है। सुकुमार है। अंधेरे में तेरा शरीर बिजली की तरह चमक रहा है। फिर तू क्या यहां मरने को आया है? ठीक है कई दिनों से मानव-मांस नहीं मिला। आज तुझे खाकर तृप्त होऊंगा।" यक्ष अपनी क्रूरता पर उतर आया। इतने भयंकर अट्टहास के मध्य प्रभु महावीर मौन, ध्यानस्थ मुद्रा में खड़े रहे। यक्ष को कुछ हैरानी हुई- 'लोग तो मेरे अट्टहास मात्र से भाग जाते हैं। यह व्यक्ति किस मिट्टी का बना है जो मेरे से डरता नहीं है।' यक्ष ने पूरी शक्ति लगाकर रौद्र रूप धारण किया। उसने हाथी का रूप बनाया। दांतों के प्रहार से, पांवों से प्रभु को रौंदने लगा। फिर पिशाच का रूप बनाया। नाखून व दांतों से प्रभु महावीर के अंगों को नोंचने लगा। प्रभु ध्यानस्थ रहे।

पुनः उसने सांप का रूप बनाकर प्रभु महावीर को काटा, पर समाधि भंग नहीं हुई। अन्त में उसने दिव्य देव-शक्ति से प्रभु महावीर के आंख, कान, नाक, सिर, दांत, नख और पीठ में भयंकर वेदना उत्पन्न की। प्रभु महावीर निर्भय रहे। वह शान्त भाव से सब कष्ट सहते रहे। मेरू की भांति अकम्पित रहे।

यक्ष प्रभु महावीर को कष्ट देने के लिए सारी रात्रि प्रयत्न करता रहा। अन्त में उसका अभिमान चूर हो गया। राक्षसी-बल के सामने आत्म-बल की जीत हुई। प्रभु की इस सहन-शक्ति का देवता पर असर पड़ा। उसने सिर झुकाकर क्षमा मांगी-

"प्रभु! मुझे क्षमा करो। मेरे से घोर अपराध हुआ है। मैंने आपकी शक्ति को नहीं पहचाना।"

प्रभु महावीर के आंखों में करूणा के आंसू थे। प्रभु महावीर ने यक्ष को प्रतिबोध दिया। प्रभु महावीर के उपदेश से यक्ष के अन्तःचक्षु खुल गए। वह प्रभु महावीर का परम भक्त हो गया।

अब रात्रि का एक मुहूर्त्त बचा था। प्रभु महावीर ने उसी मुहूर्त्त में नींद ली। उन्हें १० स्वप्न दिखाई दिए।[३०] जिनके फल के बारे में उत्पल ज्योतिषी ने कहा था जो इसी गांव में रहता था। १० स्वप्न इस प्रकार हैं-

(१) मैं एक भयंकर ताड़ सदृश पिशाच को मार रहा हूं।
(२) मेरे सामने एक सफेद पुंस्कोकिल उपस्थित है।
(३) मेरे सामने रंग-बिरंगा पुंस्कोकिल है।
(४) दो रत्नमालाएं मेरे सम्मुख हैं।
(५) एक श्वेत गोकुल मेरे सम्मुख हैं।
(६) एक विकसित पद्मसरोवर मेरे सामने है।
(७) मैं तरंगाकूल महासमुद्र को हाथों से पार कर चुका हूं।
(८) जाज्वल्यमान सूर्य सारे विश्व को आलोकित कर रहा है।
(९) मैं अपनी वैडूर्य वर्ण आंतों से मानुषोत्तर पर्वत ढक रहा हूं।

उत्पल ज्योतिषी पहले प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा का साधु था। फिर साधु जीवन छोड़ इसी गांव में ज्योतिष से जीवन यापन कर रहा था।

जब उसने सुना कि प्रभु महावीर इस मन्दिर में रात्रि में ठहरे तो उसका माथा ठनका। वह सुबह पुजारी के साथ आया। प्रभु महावीर को सकुशल पा सारा गांव प्रसन्न हो गया। दोनों नमस्कार कर कहने लगे-

"प्रभो! आपका आत्म-तेज अपूर्व है। आपने यक्ष प्रकोप को समाप्त कर दिया है।"[३१]

दस स्वप्नों का फल

(१) मोहनीय कर्म का समाप्त होना, (२) शुक्लध्यान, (३) द्वादशांङ्गी का निर्माण, (४) (ज्योतिषी की समझ में नहीं आया) बाद में प्रभु ने बताया कि मैं साधु धर्म व श्रावक धर्म को बताऊंगा, (५) चारों संघ सेवा करेंगे, (६) देव सेवा में हाजिर रहेंगे, (७) संसार-सागर को पार करने वाला, (८) केवलज्ञान की प्राप्ति, (९) कीर्ति-यश, (१०) समवसरण में सिंहासन पर विराजित हो विशुद्ध धर्म की संस्थापना करोगे।

अस्थिकग्राम के इस वर्षावास में फिर भगवान पर कोई उपसर्ग नहीं आया। उन्होंने १५-१५ दिन के आठ अर्ध-मास उपवास किए।[३२]

इस प्रकार स्वर्णिम युग की भविष्यवाणी करने वाले प्रभु महावीर ने एक रात्रि में १० स्वप्न देखे।

दूसरा वर्ष

मार्ग शीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को भगवान ने अस्थिकग्राम से वाचाला की ओर विहार किया। इसके बीच वह कुछ समय मोराक सन्निवेश पधारे और मोराक सन्निवेश उद्यान में विराजे।[३३] वहां की जनता भगवान महावीर के तपस्वी जीवन से बहुत प्रभावित हुई। वहां झुण्डों के झुण्ड प्रभु महावीर को नमस्कार करने आने लगे। दिन-रात्रि मेला लगने लगा। लोग प्रभु महावीर के दर्शन के लिए स्थान-स्थान से आते। इस सन्निवेश में अच्छन्दक जाति के पाषण्डस्थ (ज्योतिषी) रहते थे। वह ज्योतिष से अपने घर-परिवार का पोषण करते थे। प्रभु महावीर के अपूर्व प्रभाव से लोगों की मनोकामनाएं उनके दर्शन से पूरी होने लगीं।

वह ज्योतिषी महावीर से ईर्ष्या करने लगा। पर प्रभु महावीर के अभूतपूर्व प्रभाव के सामने उनकी ऋद्धियां, मंत्र-यंत्र बेकार हो गए। वह घबराकर प्रभु महावीर के पास आया। आकर निवेदन करने लगा- "भगवन्! आपका व्यक्तित्व अपूर्व है। आप अन्यत्र पधार जाएं, क्योंकि आपके यहां ठहरने से हमारा धन्धा चौपट हो गया है। मेरे बच्चे तो भूखे मर रहे हैं। अब हम दूसरी जगह जाने में असमर्थ हैं क्योंकि वहां परिचय न होने के कारण हमें कौन पूछेगा।"[३४]

करूणा सागर प्रभु महावीर ने ज्योतिषियों की पुकार को सुना और तत्काल वहां से विहार कर दिया। वहां से वह वाचाला सन्निवेश गए। इस सन्निवेश के दो भाग थे- (१) उत्तर वाचाला, (२) दक्षिण वाचाला। दोनों सन्निवेशों में सुवर्णबालुका और रूप्यबालुका नाम की दो नदियां बहती थीं।

भगवान महावीर दक्षिण वाचाला होकर उत्तर वाचाला को जा रहे थे। तब उनका दीक्षाकालीन आधा देवदूष्य भी सुवर्ण बालुका नदी के तट पर गिर गया। भगवान महावीर ने उस वस्त्र को छोड़ दिया। यह वही वस्त्र था जिसको गरीब ब्राह्मण ने रफू करवाकर नन्दीवर्द्धन राजा को सवा लाख स्वर्ण-मुद्राएं प्राप्त

दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला को जाने के दो मार्ग थे- एक कनखल आश्रम से होकर और दूसरा बाहर से। आश्रम का मार्ग सीधा होने पर भी निर्जन, भयानक व विकट संकटयुक्त था।

बाहर का रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा था। पर सुगम और विपत्तियों से रहित था। महावीर छोटे-छोटे गम्भीर कदमों को आगे बढ़ाते हुए चले जा रहे थे। रास्ते में ग्वाल-बालों से भेंट हुई। उन्होंने देखा एक भिक्षु अकेले मस्त चाल से उस भयानक रास्ते की ओर बढ़ रहा है। वे बालक प्रभु के ओज मण्डित मुख से प्रभावित हुए।

उन्होंने देखा, एक भिक्षु खतरनाक विषधर चण्डकौशिक की बाबी की ओर बढ़ रहा है। यह नाग हमेशा झाड़ियों में छिपा रहता है। महावीर नाग का भक्ष्य न बन जाएं, इसलिए हमें इन्हें रोकना चाहिए।

ग्वाल-बाल आगे बढ़े। उन्होंने प्रभु महावीर को रास्ते में रोककर प्रार्थना की- "देवार्य! यह मार्ग संकट से भरा हुआ है। इसमें एक भयंकर विषधारी नाग रहता है, जिसकी दृष्टि में विष है। यह नाग अपनी विष ज्वाला से मुसाफिरों को जलाकर भस्म कर देता है। यही कारण है कि यह सीधा रास्ता सुनसान है। आप इस मार्ग को छोड़ बाहर के मार्ग से जाएं, तो अच्छा रहेगा।[३५]

प्रभु महावीर तो जगत् का कल्याण करने वाले थे। उन्होंने शुभ चिन्तक बालकों की ओर ध्यान न देकर नाग के कल्याणार्थ आगे बढ़ना श्रेयष्कर समझा।

वह आगे बढ़े और सर्प के बिल के समीप एक देवालय में जाकर ध्यानस्थ हो गए। वह जंगल बड़ा भयंकर था। उस सर्प के आतंक के कारण हरे-भरे जंगल जल गए थे। चहुं ओर अस्थि-पिंजर नजर आ रहे थे। पर, महाश्रमण मौन, अभय और अजातशत्रु थे। वे तो आत्म-साधक थे।

इधर प्रभु महावीर ध्यानस्थ हुए। उधर सर्प सारा दिन जंगल का चक्कर लगाकर वापस आ गया। उसने देखा कि एक मनुष्य जंगल में खड़ा है। उसे बहुत हैरानी हुई और उसने सोचा- "मेरे आतंक से तो वर्षों से इस रास्ते में कोई प्राणी नहीं गुजरा। अब इस मनुष्य की क्या हिम्मत कि वह यहां आए और ध्यान भी मेरे बिल के ऊपर लगाए।"

उसने विषमय दृष्टि फेंकी। प्रभु महावीर पर कोई असर नहीं हुआ। साधारणतः उसके एक बार देखने से मनुष्य भस्म हो जाते थे।

सर्प ने दूसरी व तीसरी बार ऐसा वार किया। पर उसका कोई फल नहीं निकला। अब सर्प को क्रोध आ गया। पूरे आवेश के साथ उसने प्रभु महावीर के चरणों पर दंश मारा। इस बार उसने जो देखा वह असम्भव था। लाल रूधिर के स्थान पर दूध की धारा बह रही थी। प्रभु महावीर के चेहरे पर शान्त भरी मुस्कुराहट दिखाई दे रही थी। वह अचल खड़े रहे। नागराज को विस्मय हुआ। अब सर्पराज ने प्रभु पर दूसरा आक्रमण पहले से ज्यादा भयंकर रूप में किया। पर सांप का आक्रमण विफल था। प्रभु महावीर को कौन गिरा सकता था? सांप ने तृतीय बार पुनः डंक मारा। पर वह महाश्रमण तो हिमगिरि की चट्टान की तरह अडोल रहे।[३६]

नागराज हार चुका था। उसने सोचा- 'यह कोई असाधारण पुरूष है, जिस पर मेरा आक्रमण प्रभावशाली असर नहीं दिखा रहा।'

वह प्रभु महावीर की ओर निहारने लगा। उसका सारा शरीर बिल से बाहर आ चुका था। उसने प्रभु की आंखों में बहता करुणा अमृत देखा, तो उसका विष शान्त हो गया।

संसार के महापुरुषों ने स्त्री-पुरुषों को प्रतिबोध दिया। ये उदाहरण आम मिल जाते हैं। पर देव व पशु जगत् को प्रतिबोध देने के उदाहरण जैनशास्त्रों में कई स्थानों पर उपलब्ध होते हैं। तीर्थंकर का जीव क्योंकि केवलज्ञान का धारक होता है, वह प्रत्येक जीव के पूर्वभव को जानता है। प्रभु महावीर को देखकर नागराज शान्त हो गया, तो उस समय भगवान महावीर ने कहा-

'उवसम भो चण्डकोसिया!'

"चण्डकौशिक! शान्त हो जाओ। जागृत होओ। अज्ञानान्धकार में क्यों भटक रहे हो? पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों के कारण तुम इस जन्म में सर्प रूप में पैदा हुए हो। यदि अब न संभले तो फिर कब संभलोगे?"[३७]

चण्डकौशिक- पूर्वभव

नागराज ने जब 'चण्डकौशिक' शब्द सुना तो उसे भी जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया।[३८]

भगवान महावीर के वचनामृत सुनते ही उसके सामने उसका पूर्वभव चलचित्र की भांति घूमने लगा। नागराज सोचने लगा- 'चण्डकौशिक' नाम मैंने कभी कहीं सुना है।

वह शान्त हो चुका था। उसे ध्यान आया कि अब से तीन जन्म पहले मैं एक श्रमण था। उग्र तपस्या करता था। मेरा शरीर सूख चुका था। एक बार भिक्षार्थ घूमते हुए मेरे से असावधानी के कारण एक मेढ़क पांव के नीचे आकर मारा गया। मेरा एक छोटा शिष्य था। उसने मुझे कहा- "गुरु जी! इस मेढ़क-हत्या का प्रायश्चित्त लो।"

मैंने अपने शिष्य की हितकारी बात पर ध्यान न दिया। मैंने शिष्य की ओर घूरते हुए एक अन्य मरे मेढ़क की ओर इशारा किया और उससे पूछा- "क्या इसे भी मैंने मारा है?"

शिष्य ने मुझे क्रोधित देखकर उत्तर न दिया। हम दोनों उपाश्रय आ गए। सन्ध्या के प्रतिक्रमण का समय हो गया। शिष्य ने मुझे इस प्रतिक्रमण में अज्ञानवश हुए मेढ़क-वध की हत्या का प्रायश्चित्त करने को कहा।

"मुझे शिष्य की बात पर क्रोध आ गया। उपाश्रय में अंधेरा था। मैं वृद्ध था। मैंने एक डण्डा लिया। उस डण्डे से शिष्य को पीटने के लिए दौड़ा। रास्ते में एक खम्भा था। मैं शिष्य के पीछे भागा। मेरा सिर खम्भे से टकरा गया। इस टक्कर में मैं लहूलुहान हो गया। बिना दण्ड प्रायश्चित्त किए मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

वहां से मरकर मैं पूर्व तप के कारण ज्योतिषी देव बना और वहां से चलकर इसी कनखल आश्रम में कुलपति का पुत्र कौशिक के रूप में पैदा हुआ। मैं बचपन से ही क्रोधी था। इतने बड़े आश्रम का अधिकार आ जाने के कारण मैं ज्यादा अहंकारी व क्रोधी हो गया था। मेरे गुस्से के कारण मुझे लोग चण्डकौशिक कहने लगे थे।" आश्रम से मेरा बेहद लगाव था। उसके हर वृक्ष, पत्ते, पुष्प का मैं स्वयं ध्यान रखता था। अगर कोई पत्ता भी तोड़ता, तो मैं कुल्हाड़ी लेकर उस व्यक्ति को मारने दौड़ता।

एक दिन मैं किसी काम के कारण आश्रम में नहीं था। श्वेताम्बिका के राजकुमार खेलते-खेलते उस आश्रम में आ गए। उन्होंने मेरे आश्रम के बाग को पूर्ण रूप से उजाड़ दिया। वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया। सारा आश्रम अस्त-व्यस्त कर दिया। लता और पौधों को उखाड़कर ढेर लगा दिया। मैं अचानक वापस

मेरे दिमाग की नसें फट रही थीं। मैं आपे से बाहर हो गया। मैं उन राजकुमारों को मारने के लिए एक तेज कुल्हाड़ी लेकर दौड़ा। मैंने उन्हें ललकारते हुए कहा- "अरे दुष्टो! लो, अभी मैं तुम्हे इसका मजा चखाता हूं, तुम्हारे गर्म व ताजे खून से वृक्षों की जड़ों को सीचूंगा।"[३९]

मेरे क्रोधित चेहरे को देखकर बालक घबरा गए। वे राजकुमार मुझे चिढ़ाने के लिए इधर-उधर भागने लगे। मैं उन्हें पकड़ने के लिए इधर-उधर भागा। भागते-भागते मेरा सांस फूल गया। शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। क्रोधावेश में मैं भागा जा रहा था। मेरे हाथ में कुल्हाड़ी थी। मेरी आंखों के आगे अंधकार छा गया। मैं फिर भागा जा रहा था। रास्ते में एक गड्डा था। मैं इस आवेश में गड्डे में गिर गया। वही कुल्हाड़ी मेरे सिर पर लगी। मेरे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो गए। भयानक क्रोधावेश में मरकर मैं इसी कनखल आश्रम में दृष्टि-विष सर्प बना। इस जन्म में भी उसी क्रोध का क्रम चल रहा था। इसी कारण मैंने इस जंगल पर अपना साम्राज्य कायम किया। अपने जहर से सारे जंगल को जहरीला बना दिया।

पूर्वभव याद आते ही नाग को अपने किए पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह सोचने लगा- ' मैंने पूर्वभव व इस भव के क्रोध के कारण कितना नुक्सान उठाया है। इस भव में अब भी मेरा आतंक इस जंगल से गुजरने वाले हर प्राणी पर है। पर अब प्रभु जिनेश्वर की शरण मिल गई है। इस सुन्दर पश्चात्ताप का अवसर कहां मिलेगा?'

चण्डकौशिक अपनी भूल का पश्चात्ताप करने लगा। भगवान महावीर के दो शब्दों से वह प्रतिबुद्ध हुआ, सोचा-मैंने भयंकर अपराध किए हैं। इस विष भरे जीवन से मर जाना भला।' उसने उसी समय आजीवन अनशन व्रत किया।[४०]

प्रभु महावीर ने वहां से प्रस्थान किया।

भगवान महावीर को सुरक्षित देख लोगों को हैरानी व प्रसन्नता हुई। नागराज के जीवन के इस परिवर्तन से लोग चकित थे। जिसे मारने के लिए जनता आतुर रहती थी, अब वह उसकी पूजा के लिए तैयार थी।

नागराज बिल में मुंह छिपाकर बैठ गया। कोई उस पर दूध डाल रहा था, कोई शक्कर, कोई कुंकुम का तिलक लगा रहा था। मधुरता और चिकनाहट के कारण वहां हजारों चींटियां आने लगीं। वह नाग के शरीर को खाने लगीं। इसी असह्य पीड़ा में चण्डकौशिक के जीव ने सर्प योनि में प्राण त्यागे। शुभ भावों के परिणामों से आयु पूर्णकर वह आठवें स्वर्ग में देव बना। इस प्रकार भगवान महावीर ने साधक अवस्था में एक तिर्यंच जीव का उद्धार किया।

इस बात से यह सिद्ध होता है कि प्रभु महावीर अन्तर्यामी थे। वह मनुष्य की भाषा के साथ-साथ पशुओं की भाषा भी समझते थे।

इस घटना से जहां चण्डकौशिक के जीव को सद्गति मिली, वहां कनखल वासियों को भी नागराज के आतंक से मुक्ति मिली। अब वाचाला के दोनों मार्ग जनसाधारण के लिए खुले थे। इस तरह प्रभु महावीर ने चण्डकौशिक नाग का उद्धार किया।

वहां से चलकर प्रभु उत्तर वाचाला की ओर गए। वहां नागसेन भक्त के घर १५ दिन के उपवास का पारणा खीर से किया।[४१] फिर श्वेताम्बिका नगरी पधारे।

प्रदेश के हरिद्वार जिले में पड़ता है। यह क्षेत्र नदी, जंगलों से भरा पड़ा है ऐसा प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है।

श्वेताम्बिका का राजा प्रदेशी प्रभु का बहुत बड़ा भक्त था। उसने प्रभु महावीर का स्वागत किया। वहां से प्रभु सुरभिपुर पहुंचे थे। इस मार्ग में सम्राट् प्रदेशी के पास जाते हुए पांच नैयिक राजाओं ने भगवान महावीर की वन्दना की।[४२]

सुरभिपुर का क्षेत्र कहां स्थित था? यह पता नहीं चला। सुरभिपुर से प्रभु गंगा को पार करने एक किश्ती में बैठे। किश्ती के नाविक का नाम सिद्धदत्त था। नौका ज्यों ही चली, त्यों ही दाहिनी ओर से उल्लू बोलने लगे। उसी नौका में खेमिल नामक एक निमित्तज्ञ बैठा हुआ था। उसने भविष्यवाणी की-

"बहुत बड़ा अपशकुन हुआ है। पर इस महापुरूष के आशीर्वाद से हम बच जाएंगे।"

नौका यात्रियों से भरी पड़ी थी। आगे बढ़ते ही नौका को आंधी का सामना करना पड़ा। भयंकर तूफान में नौका मंझधार में फंस गई। यात्री चिल्लाने लगे। पर प्रभु महावीर ध्यानस्थ रहे।

यह घटना प्रभु महावीर के पूर्वभव के शत्रु सिंह के जीव द्वारा पैदा की गई थी। सिंह अब सुदृष्ट देव था। प्रभु महावीर को देखते ही उसे अपने पूर्वजन्म का वैर याद आ गया जब त्रिपृष्ट कुमार ने एक शेर को गुफा में अपने हाथों से मारा था। देव का आतंक था। प्रभु महावीर के पुण्य प्रताप से स्वयमेव शान्त हुआ। प्रभु महावीर के भक्त देव कम्बल और शम्बल ने सारे उपसर्ग दूर किए। नाव किनारे पर लग गई।[४३]

प्रभु थूणाक सन्निवेश में

आज थूणा या स्थूणा का क्षेत्र गंगा के पार वर्तमान थानेश्वर है। इसे आज भी स्थूणा ही कहते हैं। यह स्थान कुरूक्षेत्र युद्ध व गीता उपदेश-स्थल के रूप में जाना जाता है। यह क्षेत्र प्राचीन कुरू देश व वर्तमान अम्बाला में पड़ता है। प्रभु महावीर यहीं किश्ती से उतरे। गंगा तब कहीं इस क्षेत्र में जरूर बहती होगी। आज यह गंगा कनखल आश्रम को घेरे हुए है। नदियां अपना रुख बदलती हैं तो बहुत किलोमीटर पीछे या आगे आ जाती हैं।

कहने का अर्थ यह है कि थूणांक सन्निवेश एक क्षेत्र था जहां गंगा बहती थी। फिर आगे गंगा की रेत का क्षेत्र था। आज भी हस्तिनापुर नगर गंगा की रेत का जीता-जागता प्रमाण है जो कुरू देश की राजधानी थी। हो सकता है इस सारे क्षेत्र को थूणांक सन्निवेश भी कहते हों जो कुरू देश का भाग था।

इस बात के विपरीत उत्तर प्रदेश या बिहार में स्थूणा नाम का कोई गांव या सन्निवेश नहीं है।

इस गांव में पुष्प नाम का निमित्तज्ञ रहता था। प्रभु महावीर गंगा को पार करने के बाद सूखी रेत पर चले जा रहे थे। उनके चरण-चिन्हों के निशान उस रेत पर पड़ रहे थे। ये चिन्ह चक्रवर्ती के थे। पुष्प ने सोचा- 'कोई चक्रवर्ती बनने वाला मनुष्य जंगल में भटक रहा है, मुझे उसकी अब सेवा करनी चाहिए। शायद किसी की साजिश के तहत उसे भागना पड़ा हो। यह एक बात तो निश्चित है कि रेत पर पड़े निशान चक्रवर्ती के हैं। अगर मैं अब उनकी सेवा करूंगा, तो भविष्य में मुझे मालामाल कर देंगे।'[४४]

सांसारिक पुरूष कभी भी वर्तमान से संतुष्ट नहीं हो पाते हैं। इसी तरह के स्वभाव का स्वामी पुष्प ज्योतिषी था। वह रेत में छपे प्रभु महावीर के चरण-चिन्हों को खोजता-खोजता प्रभु महावीर तक आ पहुंचा। पर वहां प्रभु महावीर जैसा निर्ग्रन्थ भिक्षु देखा। उसे अपने ज्ञान ज्योतिष पर शंका हुई। उसे इतना

[illegible]
झुकेंगे। तुम्हारा शास्त्र सत्य है।''[४५]

मंखलिपुत्र गोशालक से भेंट

दूसरा वर्ष

प्रभु नगर-नगर, गांव-गांव घूमकर ध्यान लगाते। कष्ट सहते। इस तरह दूसरे वर्ष का वर्षावास आ गया। प्रभु महावीर ने यह वर्षावास राजगृह के एक भाग नालंदा में करने का निश्चय किया। यहीं उनकी भेंट आजीवक सम्प्रदाय के एक श्रमण मंखलिपुत्र गोशालक से हुई। इतिहास दृष्टि से गोशालक का वर्णन जितना जैन ग्रन्थों में विस्तृत रूप में मिलता है अन्यत्र नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि वह साधनाकाल में प्रभु महावीर का साथी रहा था। अपने विपरीत स्वभाव के कारण वह प्रभु महावीर के लिए कष्ट का कारण बना। प्रभु महावीर से ज्ञान प्राप्त किया। शक्तियां प्राप्त कीं। पर वह कुपात्र निकला।

गोशालक का मत नियतिवादी(भाग्यवादी) था। गोशालक भगवान बुद्ध से भी मिला था, पर वह जैन श्रमणों का कट्टर दुश्मन था। इसकी दुश्मनी का उत्तर प्रभु महावीर ने क्षमा से दिया।

नालंदा में एक जुलाहे की तंतुशाला (कपड़े बुनने का कारखाना) में प्रभु महावीर ने यह वर्षावास किया। वहां मंखलि-पुत्र गोशालक वर्षावास के लिए पहले से टिका हुआ था। उसने प्रभु महावीर की तपस्या को करीब से देखा। वह प्रभु महावीर के क्रिया-कलापों व मौन-साधना से आकर्षित हुआ।

एक बार प्रभु महावीर ने मासखमण की तपस्या को सम्पन्न किया, वह भिक्षा के लिए पधारे। जिस श्रावक ने उन्हें भिक्षा दी, उसके घर पांच प्रकार के दिव्य प्रकट हुए। देवदुन्दुभि बजी। रत्नों की वर्षा हुई। वह सोचने लगा- 'सचमुच! इस श्रमण की तपस्या महान् है, जिसके तप के आगे देवता भी नमन करते हैं। मुझे भी इनका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए।'

उसने प्रभु महावीर से प्रार्थना की। प्रभु महावीर मौन रहे। प्रभु महावीर ने इस वर्षावास में एक-एक मास का तप किया।[४६]

जब वर्षावास समाप्त हो गया, तो गोशालक भिक्षा के लिए जाने से पहले पूछने लगा- ''भन्ते! आज मुझे भिक्षा से क्या प्राप्त होगा?''

प्रभु महावीर ने उत्तर दिया- ''कोदों का बासी तन्दुल, खट्टी छाछ व खोटा सिक्का।''

गोशालक प्रभु का वचन झुठलाने के लिए उच्च घरों में गया। पर किसी ने भी उसे भिक्षा न दी। फिर वह गरीबों की बस्ती में गया, तो एक लुहार ने उसे खट्टी, बासी छाछ दक्षिणा में खोटा सिक्का दिया।

यही वह घटना थी जिसके कारण मंखलिपुत्र गोशालक नियतिवाद की ओर ज्यादा प्रभावित हुआ।

वह सोचने लगा- 'जो होना होता है, वह होकर रहता है और सब कुछ होना पूर्व से निश्चित है।' यह सिद्धान्त भाग्यवादी सिद्धान्त है, प्रभु महावीर के अनेकांतवादी सिद्धांत से विपरीत।

भगवतीसूत्र में स्पष्टतः गोशालक के जन्म व घटनाओं का वर्णन इस प्रकार है-

गोशालक का पिता मंख था। वह चित्र दिखाकर भिक्षा मांगता था। गांव-गांव घूमता था। एक बार वह एक गायशाला में ठहरा हुआ था। वहीं उसकी प्रसूता पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया, जो आगे चलकर गोशालक नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था।

कारण बना।

प्रभु ने अपना चातुर्मास नालंदा में सम्पन्न किया। वह चातुर्मास से विहार कर कोल्लाग सन्निवेश पहुंचे। यहां एक ब्राह्मण के घर पर प्रभु ने चातुर्मास तप का पारणा किया। चातुर्मास समाप्त कर भगवान नालंदा से विहार कर चुके थे।

गोशालक जब वापस उपाश्रय में आया, उसे प्रभु महावीर दिखाई न दिए। वह प्रभु महावीर की तलाश में उनके पीछे हो लिया। उसे कोल्लाग सन्निवेश में प्रभु महावीर के दर्शन हुए।

उसने प्रभु महावीर से पुनः शिष्य बनने की प्रार्थना की, पर इस बार प्रभु ने इस पर दया कर इसे शिष्य बनाना स्वीकार किया।[89]

तीसरा वर्ष

इस प्रकार दो वर्ष साधनाकाल के बीत चुके थे। तीसरा वर्ष शुरू हो गया था। प्रभु महावीर कोल्लाग सन्निवेश से मंखलिपुत्र गोशालक को साथ लेकर जा रहे थे। प्रभु महावीर सुवर्णखल की तरफ आ रहे थे। रास्ते में एक जगह ग्वालों की टोली मिली। ग्वाले खाली बैठे थे। मस्ती के वातावरण में उन्होंने खीर पकानी शुरू की।

जैसे पहले कहा जा चुका है गोशालक जीभ का लोलुप था। उसने प्रभु महावीर से कहा- "भन्ते! कुछ समय यहां रुक जाते हैं। खीर का भोजन खाकर चलेंगे।"

फिर गोशालक प्रभु महावीर के बारे में ग्वालों को परिचय कराने लगे- "हे आर्यो! यह मेरे गुरू त्रिकालदर्शी[90] सर्वज्ञ देवार्य हैं।"

फिर उसने प्रभु महावीर से पूछा- "प्रभु! क्या ग्वालों की खीर पक जाएगी?"

प्रभु महावीर ने भविष्यवाणी की- "गोशालक! जिस खीर को खाने को तुम कामना करते हो, वह तो पकेगी नहीं, पकने से पहले इस खीर की हांडी फट जाएगी।"

गोशालक ने यह बात ग्वालों से कही। ग्वालों को प्रभु महावीर की सर्वज्ञता पर अटूट विश्वास हो गया। वे सोचने लगे- 'यह भिक्षु झूठ कैसे बोल सकता है? इसलिए हमें इस हांडी पर विशेष ध्यान देना चाहिए।'

उन्होंने बांस की खपच्चियों से हांडी को अच्छी तरह बांध दिया। उस हांडी के चारों ओर घेरा डालकर बैठ गए। इधर भगवान महावीर ने आगे प्रस्थान किया। गोशालक खीर की आशा के कारण ग्वालों के बीच बैठा रहा। खीर पक रही थी। हांडी में दूध लबालब भरा हुआ था और ऊपर से चावलों की मात्रा भी ज्यादा डाल दी, चावल पक रहे थे। पककर चावल फूलने लगे। चावलों के फूलते ही हांडी के फटकर दो टुकड़े हो गए। सारी खीर धूल में मिल गई।

गोशालक की आशा निराशा में बदल गई। इस घटना से गोशालक की खीर खाने की भावना धरी की धरी रह गई। पर इस घटना से उसका नियतिवाद पर विश्वास अटल हो गया।

वहां से विहार कर प्रभु ब्राह्मणग्राम पधारे। इस गांव के दो स्वामी थे- एक भाग नन्दपाटक तथा दूसरा भाग उपनन्दपाटक था। भगवान महावीर नन्दपाटक वाले भाग में घरों में भिक्षा के लिए पधारे। भगवान महावीर को बासी भोजन प्राप्त हुआ।

बासा बन तन्दुल, गाशालक का दन आइ, पर गाशालक ता रस लालुपा था। उसन इस भाजन का लन से इन्कार कर दिया।

गोशालक के इन्कार से उपनन्द क्रोधित हो गया। उसने अपनी दासी को आज्ञा दी- "इसको यही भिक्षा देनी है। अगर यह भिक्षा नहीं लेता है, तो उसके सिर पर डाल दो।" दासी ने वह बासी भोजन गोशालक के सिर पर डाल दिया। गोशालक क्रोध में इधर-उधर की बातें करने लगा। उसने उपनन्द को शाप तक दे डाला। पर गोशालक अभी इस काबिल नहीं था कि किसी को शाप या आशीर्वाद देता।

यहां से विहार कर प्रभु अंग देश की राजधानी चम्पानगरी पधारे। वर्षावास का समय आ गया था। वर्षावास के समय में प्रभु महावीर ने दो-दो मास के उत्कृष्ट तप के साथ विविध आसन व ध्यानयोग की साधना की।

पहले मासखमण व्रत का पारणा चम्पा में किया। दूसरा पारणा चम्पा से बाहर किया।[४९]

वर्षावास सम्पूर्ण होते ही प्रभु ने कालाय सन्निवेश की ओर विहार किया।

चतुर्थ वर्ष

कालाय सन्निवेश से वे पत्तकालाय पधारे। दोनों ही स्थानों पर उन्होंने रात्रि का समय खण्डहरों में बिताया।[५०] वे वहां ध्यानस्थ थे। इन दोनों स्थानों पर गोशालक के विपरीत स्वभाव के कारण गोशालक को लोगों से मार खानी पड़ी। पत्तकालय से आपने कुमारक सन्निवेश की ओर विहार किया। वहां पर चम्पक नामक उद्यान था वहां प्रभु महावीर ने ध्यान लगाया। कायोत्सर्ग प्रतिमा धारण करके रहे।[५१]

भगवान पार्श्वनाथ के श्रमणों में गोशालक की भेंट

जब भिक्षा का समय आया तो गोशालक ने प्रभु महावीर से कहा- "चलो प्रभु! भिक्षा के लिए चलें।"

प्रभु ने कहा- "आज मेरा उपवास है।"

गोशालक निकल पड़ा। उस समय पार्श्वापत्य मुनि चन्द्र स्थविर, कुमारक सन्निवेश में कुम्हार कुवणय के स्थान पर ठहरे हुए थे। गोशालक ने रंग-बिरंगे कपड़ों में मुनि को देखा। गोशालक ने पूछा- "तुम कौन हो?"

पार्श्वापत्य - "हम श्रमण निर्ग्रन्थ परम्परा के मुनि हैं। तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथ के शिष्य हैं।"

गोशालक- तुम कैसे निर्ग्रन्थ हो? इतने सारे वस्त्र और पात्र का परिग्रह तुमने इक्ट्ठे किए हैं। सच्चे निर्ग्रन्थ तो मैं, मेरे धर्माचार्य हैं जो तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमा हैं।"[५२]

पार्श्वापत्य- "जैसा तू है, वैसे ही तेरे गुरू स्वयं गृहीतलिंग होंगे।"

गोशालक- "तुम मेरे तप-त्यागी गुरू का अपमान करते हो। मेरे धर्माचार्य के तप-तेज से तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जाएगा।"

गोशालक के कहने पर उनका कोई नुक्सान नहीं हुआ।

पार्श्वापत्य - "क्यों व्यर्थ कष्ट कर रहे हो? हम तुम्हारे जैसों के शाप से न तो हम भस्म होंगे, न ही हमारा उपाश्रय।"

गोशालक इन मुनियों के उत्तर से चुप होकर वापस लौट आया। उसने आकर सारी बातें प्रभु